Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

राज्य के सप्तांगों में कोष की महत्ता

डॉ. आरती यादव
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, संस्कृत – विभाग,
चौ. चरण सिंह पी. जी. कॉलेज हेंवरा सैफ़ई, इटावा, उत्तर प्रदेश, भारत।

Article Info
Volume 3, Issue 5
Page Number: 261-273
Publication Issue :
September-October-2020
Article History
Accepted : 10 Sep 2020
Published : 20 Sep 2020

सारांश– राज्य प्रशासन में कोश की भूमिका अत्यन्त महनीय है। उसके बिना न तो सेना का सुचारू रुप से संचालन हो सकता है और न ही न्याय व्यवस्था सुचारू रूप से चल सकती है इसलिए राजा को कोष वृद्धि का हर संभव प्रयत्न करना चाहिए। अन्यथा राज्य व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं चल पायेगी।

मुख्यशब्द – राज्य, सप्तांग,कोष, राज्य, प्रशासन, न्याय, व्यवस्था,

---

व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति के लिए अर्थ अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय मनीषियों द्वारा गहन चिन्तन, मनन के पश्चात् व्यक्ति और समाज के लिए सुस्थापित पुरुषार्थ चतुष्टय में अर्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। अर्थ की महत्ता किसी भी देश, काल अथवा परिस्थिति में अनिवार्य है। अर्थ के बिना लोकयात्रा कथमपि सम्पन्न नहीं हो सकती। आवास, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा आदि अर्थ के बिना सिद्ध नहीं हो सकती। धर्म और काम की सिद्धि भी बिना अर्थ के नहीं होती। परोपकार और यज्ञ के लिए भी अर्थ आवश्यक है जो लोग यह समझते हैं कि अर्थ अनर्थ का मूल है, यह तो केवल मात्र माया है, असत्य है- इसकी उपेक्षा करनी चाहिये या इसकी ओर से सर्वथा त्यागवृत्ति ही कल्याण का मार्ग है – यह पूर्णत: सत्य नहीं कहा जा सकता है। वेदों में स्थान- स्थान पर इस आशय के मन्त्र उपलब्ध होतें हैं। जिनमें प्रार्थना की गई है कि हम गौ, अश्व, हिरण्यादि अपार सम्पत्ति के स्वामी बनें -

वयं स्याम, पतयो रयीणाम् - **ऋ.१०/१२/१०.**

वेद मन्त्रों में परमात्मा से धन प्राप्ति की प्रार्थनाये अनेक मन्त्रों में की गई हैं-

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

उभा हि हस्ता वसुना प्रणुस्व। - अर्थात् हे प्रभो। हमारे दोनों हाथों को धनों से अच्छी प्रकार भर दो- **यजु५/१९.**

वयं भगवन्त स्याम –हे प्रभो। हम सब प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण होवें। **-यजु. ३४/३८.**

वैदिक साहित्य के बाद रामायण, महाभारत आदि में भी अर्थ का गौरवगान किया गया है। मनुस्मृति में राजा के लिए अर्थ – संग्रह की बड़ी सुन्दर व्यवस्था प्रतिपादित हैं। राजा अर्थ अति लोभ से दूसरों के सुख के मूल को नष्ट न करे अर्थात् लोभ से कर न ले –

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ।
उच्छिन्दन्ह्यात्मनो मूलमात्मान तांश्च पीडयेत्॥ **मनु.७/१३९**

अर्थ की सुदृढता के लिए मनु ने चार उपाय बताये हैं –

१.अप्राप्त के प्राप्ति की इच्छा

२. नित्य देखने से प्राप्त की रक्षा

३. रक्षित की वृद्धि

४. बढे हुए धन का व्यय

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नत: ।
रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु नि:क्षिपेत् ॥ - **मनु.७/९९.**

अर्थ की महत्ता पर मनु लिखते हैं कि सब पवित्रताओं में अर्थ की पवित्रता अति श्रेष्ठ है –

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परमं स्मृतम् ॥ - **मनु.३/१६.**

महाभारत में धर्म के समान अर्थ की महत्ता व्यापक रूप से कही गई है। दरिद्र मनुष्य पास में खड़ा हो तो लोग उसको इस प्रकार देखते हैं मानों वह कोई पापी या कलंकित हो। अत: दरिद्रता इस जगत में एक पाप है। पतित और निर्धन में कोई अन्तर नहीं है। जैसे पर्वतों से बहुत सी नदियां बहती रहती हैं उसी प्रकार बढे हुए संचित धन से सब प्रकार के शुभ कर्मों के अनुष्टान होता रहते हैं। धन से ही काम और स्वर्ग की सिद्धि होती है। लोगों का जीवन निर्वाह भी धन के बिना नहीं हो सकता।[1]

महान नीति निष्णात विदुर जी ने अर्थ की महत्ता इस प्रकार प्रतिपादित की है – अर्थ ही समस्त कर्मों की मर्यादा के पालन में सहायक है, अर्थ के बिन धर्म और काम भी सिद्ध नहीं होते, धनवान मनुष्य धन के द्वारा उत्तम धर्म का पालन और अजितेन्द्रिय पुरुषों के लिये दुर्लभ कामनाओं की प्राप्ति कर सकता है। जिस प्रकार सभी प्राणी सदैव ब्रह्मा जी की उपासना करते हैं उसी प्रकार उत्तम जाति के मनुष्य भी सदा धनवान् पुरुष की कामना करते रहते हैं[2]।

[1] शान्तिपर्व ८/१४-१७

[2] शान्तिपर्व १६७/१२-१५

अर्थ की महत्ता इस बात से भी सिद्ध हो जाती है कि चाणक्य सदृश महान आचार्य ने 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' जैसे विशाल ग्रन्थों का प्रणयन किया । काव्य का प्रयोजन निरूपित करते हुए आचार्य मम्मट यश के पश्चात दूसरा स्थान अर्थ को प्रदान करते हैं। **-काव्यं यशसे अर्थकृते।**

राज्य प्रशासन में कोष की भूमिका –

केवल जनसमूह से ही राज्य का निर्माण नहीं होता है प्रत्युत राज्य के लिए जनसमूह का भौगोलिक सीमाओं के भीतर रहना आवश्यक है, जनसमूह को स्वामी के अनुशासन के अनुसार चलना होगा, राज्य के लिए एक सुव्यवस्थित आर्थिक व्यवस्था होगी (कोश) रक्षा के लिए बल होगा (सेना), सलाह के लिए मंत्री होगें। इस प्रकार मनीषियों ने राजा के लिए सप्तांगों की कल्पना की है

शुक्रनीतिसार ने राज्य के सप्तांगों की तुलना शरीर के अगों से की है- राजा ,मन्त्री, मित्र, कोश, देश, दुर्ग, किला, सेना ये राज्य के सात अंग कहे गये हैं –

स्वाम्यमात्यसुहृत्कोश राष्ट्रदुर्ग बलानि च ।
सप्तांगमुच्यतेराज्यंत्रमूर्धानृप: स्मृत: ॥
दृगमात्यासुहृत्छ्रोत्रंमुखंकोशाबलं मन:।
हस्तौपादौदुर्गराष्ट्रौराज्यांगानिस्मृतानिहि॥ - शुक्र-१/६१-६२.

मनुस्मृति और अर्थशास्त्र में इन्हें राज्य की प्रकृतियां बताया गया है-
अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, अर्थ तथा दण्ड नाम की प्रकृतियां है। यह पांचों प्रत्येक बारह की होती हैं। इस प्रकार कुल ७२ प्रकृतियां हैं-

अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्या: पञ्च चापरा:।
प्रत्येकं कथिता होता संक्षेपेण द्विसप्तति:॥ - मनु. ७/१५७
स्वाम्यमात्य जनपददुर्गकोश दण्डमित्राणि प्रकृतय:। - अर्थ.६/९६/१

कोश-

राज्य के संचालन के लिए राजा के पास भरपूर कोश की आवश्कता सदैव बनी रहती है। विभिन्न प्रकार के व्यय राजा तभी कर सकता है जब उसके पास पर्याप्त धन हो।

एकार्थसमुदायो य: स्यात्पृथक्पृथक्॥ -शुक्र.४/१६

अर्थात् जो एक प्रकार के धन का समुदाय हो उसे पृथक-पृथक कोश कहते हैं।

कोश का महत्व-

कोश के महत्व के विषय में कौटिल्य का कहना है कि जिस राजा का कोश रिक्त हो जाता है वह नगरवासियों को चूसने लगता है। कौटिल्य ने ठीक ही कहा है कि राज्य के सारे व्यापार कोश पर निर्भर रहते हैं। अत: राजा को सर्वप्रथम कोश पर ध्यान देना चाहिए-

कोशपूर्वा: सर्वारम्भा। तस्मात् पूर्व कोश्मवेक्षते। -अर्थ.२४/८

बिना वित्त के न तो सैन्य व्यवस्था हो सकती है, न न्याय और चिकित्सा, शिक्षा, यातायात आदि सभी कार्यों के लिए अर्थ आवश्यक है। जिस राजा का कोश जितना समृद्ध होगा वह अपने राज्य को उतना ही सुदृढ और जनहितकारी बना सकेगा। राजकोश के क्षीण हो जाने पर सम्पूर्ण राजव्यवस्था चरमरा जायेगी।

वैदिक साहित्य में और स्मृति ग्रन्थों में ही नहीं अपितु रामायण महाभारत आदि में भी राजा के लिए कोश की आवश्यकता पर बहुत बल दिया गया है। राजा के लिए इन्द्र शब्द का प्रयोग यह बताता है कि वह इन्द्र अर्थात ऐश्वर्य वाला होना चाहिए। कोश से दुर्बल राजा को छोड़कर राजसेवक दूसरे राजाओं के पास चले जाते हैं। उसकी कोई नीति सफल नहीं होती। महान अर्थशास्त्री और राजनीति के आचार्य महामति चाणक्य ने भी अर्थ के महत्व को उद्घोषित किया है। वेद में नाना प्रकार के व्यापार, उद्योग, शिल्प, आदि का वर्णन प्राप्त होता है ये सब सुव्यवस्थित रूप से चले इस दृष्टि से धन की महती आवश्यकता है। व्यापार आदि की वृद्धि पर समाज के व्यक्तियों के पास अपनी आवश्यकता पूर्ति के पश्चात् जो द्रव्य बचता है उसका संग्रह होने लगता है और उस एकत्रित धन से अन्य व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए एवं सार्वजनिक कार्यों के लिए देने तथा व्यय करने की शक्ति प्राप्त होती है। राजा को विभिन्न माध्यमों से जो कर प्राप्त होता है वह भी बढता जाता है। इस प्रकार राजा और प्रजा दोनों के पास संग्रहीत होने वाले धन से कोशों की स्थापना की जानी चाहिए।

व्यक्तिगत राशियों का सामूहिक रूप में रक्षण और उससे व्यापार संचालन आजकल की बैंकिंग प्रणाली का आधार है। इसका प्रारंभ भले ही आधुनिक काल में अर्थात १९वीं या २०वीं सदी में हुआ होगा, किन्तु वेद के अध्ययन से इसका संकेत मिल जाता है। वेदमन्त्र में प्रार्थना की गई है –

निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे। -यजु,२३.१९

अर्थात निधयों के निधिपति के रूप में हम तुमको स्वीकार करते है। निधिपति शब्द स्पष्ट रूप से कोश का निर्देश दे रहा है। निधिपति- कोषाध्यक्ष बनने के लिए गणन कला में निपुण होना चाहिए। इसलिए वेद इसी मन्त्र में कहता है-

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। - यजु-२३.१९

राजा और प्रजा के कोष भिन्न-भिन्न होते हुए भी सब पर नियन्त्रण राजा का होना चाहिए। ताकि उसका दुरुपयोग न हो।

महाभारत में कोष को राज्य का मूल माना गया है। भीष्मपितामह युधिष्ठिर से कहते हैं राजा अपने तथा शत्रु के राज्य से धन लेकर अपने खजाने को भरता रहे, क्योंकि कोश से ही धर्म की वृद्धि होती है और राज्य की जड़ें मजबूत होती है। इसलिए राजा कोष का संग्रह करे, संग्रह करके आदरपूर्वक उसकी रक्षा करे और रक्षा करके निरन्तर उसको बढाता रहे यही राजा का सदा से चला आने वाला धर्म है-

स्वाराष्ट्रात् परराष्ट्राच्च कोषं संजनयेन् नृपः ।
कोषाद्धि धर्मः कौन्तेय राज्यमूलं च् वर्धते ॥
तस्मात् संजनयेत कोशं सत्कृत्य परिपालयेत्।
परिपाल्यानुतनुयादेष धर्म सनातनः। - शान्तिपर्व. १३३/१२

यहां पर कोश संग्रह के विषय में यह भी कहा गया है कि विशुद्ध आचार- विचार में रहने वाला कभी कोश का संग्रह नहीं कर सकता और जो बहुत ही क्रूर है, वह भी सफल नहीं हो सकता। अतः मध्यम मार्ग का आश्रय लेकर कोश संग्रह करना चाहिए। यदि राजा निर्बल हो तो भी उसके पास कोश नहीं रह सकता। जो कोशहीन है

उसके पास सेना नहीं ठहर सकती, जिसके पास सेना नहीं है, उसका राज्य कैसे टिक सकता है और जो राज्य से हीन हो गया उसके पास लक्ष्मी नहीं रह सकती -

न कोश: शुद्धशौचेन न नृशंसेन जातुचित् ।
मध्यं पदमास्थाय कोशसंग्रणं चरेत् ।
अबलस्य कुत: कोशो हयकोशस्य कुतोबलम् ।
अबलस्य कुतो राज्यभराज्ञ: श्रीर्भवेत् कुत: । - शान्तिपर्व. १३३/३-४

राजा का यह भी कर्तव्य बताया गया है कि वह प्रतिदिन अपने गणक- लेखकों द्वारा प्रस्तुत आय व्यय के लेखे का निरीक्षण करे।

जिस राजा के पास धन का भण्डार नहीं है उसकी साधारण मनुष्य भी अवहेलना करते हैं। उससे थोड़ा लेकर लोग संतुष्ट नहीं होते हैं और न ही उसका कार्य करने में उत्साह दिखाते हैं -

हीनकोशं हि राजानमवजानन्ति मानवा ।
न चास्याल्येन तुष्यन्ति कार्यमत्युत्सहन्ति च ॥ -शान्तिपर्व. १३३/६

गौतम का कहना है कि कोश राज्य के अन्य छ: अंगों के आधार है। शांति पर्व ने भी कोश की महत्ता गाई है-

कोशश्च सततं रक्ष्यो यत्नगारथाय राजाभि:।
कोशमूला हि राजान कोशमूलकारो भव:।। -शान्तिपर्व. ११९/१६

कामन्दक ने तो यहां तक कहा है कि यह लौकिक प्रसिद्धि है कि राजा कोश पर आधारित है। **मनु** ने कहा है कि राज्य का कोश एंव शासन राजा पर निर्भर रहता है अर्थात् राजा को उन पर व्यक्तिगत ध्यान देना चाहिए -

अमात्ये दण्ड आयन्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च् दूते सन्धिविपर्ययो॥ -मनु. ७/६५

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कहा है कि कोश की उन्नति खान पर निर्भर है, कोश की समृद्धि से शक्तिशाली सेना तैयार की जा सकती है। इस कोशगर्भा पृथिवी को कोश और सेना से ही प्राप्त किया जा सकता है -

आकरप्रभव: कोश कोषाद्दण्ड; प्रजायते।
पृथिवी कोषदण्डाभ्यां प्राप्यते कोशभूषणा॥ -अर्थ. २८/१२.

शुक्रनीति में बल का मूल कोश बताया गया है -

तथाकोशस्तुसंधार्य: स्वप्रजा रक्षणक्षम:।
बलमूलोभवेत्कोश: कोशमूलंबलंस्मृतम्॥ -शुक्र. ४/२९.

इसी में यह भी कहा गया है कि कोश का संग्रह परलोक और इस लोक में सुखदाई होता है -

बलप्रजारक्षणार्थयज्ञार्थ कोश संग्रह :।
पत्रेहृचसुखदोनृपस्यान्यश्चदु:खद:।। -शुक्र.४/१८.

अर्थात् सेना, प्रजा की रक्षा, यज्ञ लिए कोश का संग्रह परलोक और इस लोक में सुखदाई होता है और अन्य कोश दुख का दाता कहा है। और जो कोश स्त्री और पुत्र के लिए ही किया हो वह केवल उपभोग के लिए होता है और परलोक में नरकार्थ है सुखदाई भी नहीं-

स्त्रीपुत्रार्थकृतोयश्चसोपभोगाय केवल:।

नरकायैवसज्ञेयोनपरत्र सुख प्रद:॥ - शुक्र. ४/१९.

इसी अध्याय में कहा गया है कि जिस राजा ने नीति और बल को त्यागकर अपनी प्रजा की पीड़ा से धन का संचय किया हो उस राजा का राज्य शत्रुओं के अधीन हो जाता है –

व्यक्त्वानीतिबलंस्वीयप्रजापीडतोधनम् ।
संचितं येन तन्तस्यस्वराज्यंशत्रुसाद्भवेत्॥ - शुक्र. ४/२३.

शान्ति पर्व में कहा गया है कि –कोश खाली होते ही राजा शत्रुओं के अधीन हो जाता है –

असंशयं पुण्यशील: प्राप्नोति परमां गतिम्।
त्रिविष्टपे पुण्यतमं स्थानं प्राप्नोति पार्थिव:।
कोशक्षये त्वमित्राणां वशं कौसल्य गच्छति॥ शान्ति. १०६/१८.

अर्थात् पुण्यशील राजा निश्चय ही परमगति को प्राप्त होता है, कोष खाली होते ही राजा शत्रुओं के अधीन हो जाता है। **शान्तिपर्व** में ही कहा है कि राजा का कोश नष्ट होने से ही उसके बल का नाश हुआ करता है -

राज्ञ: कोशक्षयादेव जायते बलसंक्षय:।

कोश की तुलना यज्ञ की सिद्धि के लिए प्रयुक्त सामग्रियों से की गई है-

यज्ञार्थमन्यदभवति यज्ञे नार्थस्तथापर:।
यज्ञास्यार्थार्थमेवान्यन्तत्सर्वं यज्ञसाधनम्॥

अर्थात् जैसे यज्ञ की सिद्धि के लिए अन्य सामग्रियां होती है, उत्तम यज्ञ चित्त संस्कार का कारण हुआ करता है और यज्ञ सम्बन्धी अन्य बातें भी किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए होती हैं तथा यह सब यज्ञ का साधन ही है, वैसे ही कोश का कारण दण्ड, बल का कारण कोश और शत्रु पराभव का कारण कोश, बल तथा नीति ये तीनो ही राज्य पुष्टि के निमित्त हुआ करते हैं।

इसी पर्व में कहा गया है कि धन से मनुष्य यह लोक और परलोक दोनों पर ही विजय प्राप्त कर लेता है, निर्धन को इसमें सफलता नहीं मिलती। वह नहीं के बराबर होता है। पण्डित लोग धनहीन पुरूष को ही दुर्बल कहते हैं, धन से ही मनुष्य बलवान् होता है, धनवान् मनुष्य को सब कुछ सुलभ है। कोश तथा कोशवाला मनुष्य सब विपदाओं से पार हो जाता है, कोष के जरिए धर्म, अर्थ, काम तथा इस लोक और परलोक में सुख लाभ होता है-

धनेन जयते लोकावुभौ परमिमं तथा।
सत्यं च धर्मवचनं यथा नास्त्यधनस्तथा॥
अनधं दुर्बलं प्राहुर्धनेन बलतान्भवेत्।
सर्व धनवत प्राप्यं सर्वं तरति कोशवान्।
कोशाद्धधर्श्च कामश्य परो लोकस्तथाप्ययम्॥ - शान्ति.१२८/४३,४९

कोष गृह निर्माण की विधि-

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कोष निर्माण की विधि इस प्रकार बताई है। इसका निर्माण सन्निधाता को करना चाहिए -

सन्निधाता कोशगृहं यष्यगृहं कोष्ठागारं कुप्यगृहगायुधागारं बन्धनागारं च कारयेत्। -अर्थ. २१/५.

कैसे निर्माण करना चाहिए इसका उल्लेख इस प्रकार करते हैं – शिलारहित स्थान में बावड़ी के समान एक चौरस गड्ढा खुदवाकर चारों ओर से उसकी दीवारों और उसके फर्श को मोटी मजबूत शिलाओं से चुनवाना चाहिए। उसके बीच में मजबूत लकड़ियों से बने हुए पिंजरे के समान अनेक कोठरियां हों, उसमें तीन मंजिल हो, तीनों मंजिलों में बढियां दरवाजे तथा सुन्दर फर्श हो, ऊपर नीचे चढने उतरने के लिए उसमें सोपान लगा हो। उसके दरवाजों पर देवताओं की मूर्तियां अंकित हो, इस प्रकार का एक भूमि गृह बनवाना चाहिए उस भूमिगृह के ऊपर एक कोशगृह बनवाना चाहिए, उस पर बाहर भीतर से बन्द की जाने वाली अर्गलाएं हों, एक बरामदा हो, पक्की ईंटों से उसको बनया गया हो, एवं वह चारों ओर अनेक पदार्थों से भरे हुए मकानों से घिरा हो। जनपद के मध्य भाग में प्राणदण्ड पाये पुरूषों के द्वारा आपत्ति में काम आने वाला एक ध्रुव निधि (गुप्त खजाना) बनवाना चाहिए –

चतुरश्रां वापीमनुदकोपस्नेहां खानयित्वा पृथुशिलाभिरूभयत: पार्श्व मूलं च प्रचित्य सारदारुप्'च् भूमिसमत्रितलमनेकविधानं कुट्टिममदेश्स्थानतलमेकद्वारं यन्त्रयुक्तसोपानं देवतापिधानं भूमिगृहं कारयेत्।तस्योपर्युभयतोनिषधं सप्रग्रीवभैष्टकं भाण्ड्वाहिनीपरिक्षप्तं कोशगृहं कारयेत्, प्रसादं वा। जनपदान्ते ध्रुवनिधिमापर्थमभित्यक्तै: पुरूषै कारयेत्।

कोष के गुण-

अर्थशास्त्र में **कौटिल्य** ने कोश का गुण इस प्रकार दिया है –राजकोश ऐसा होना चाहिए जिसमें पूर्वजों की तथा अपनी धर्म की कमाई संचित हो, इस प्रकार धान्य, सुवर्ण, चांदी, नाना प्रकार के बहुमूल्य रत्न तथा हिरण्य से भरा- पूरा हो, जो धुर्भिक्ष एवं आपत्ति के समय सारी प्रजा की रक्षा कर सके। इन गुणों से युक्त खजाना कोष संपन्न कहलाता है –

धर्माधिगत: पूर्वै: स्वयं वा हेमरूप्य प्रायाश्चितस्थूलरत्नाहिष्यो दीर्घामत्यापदमनायर्तिं सहेतेति कोशसम्पत्।
-अर्थ.९६/१.

राजनीतिरत्नाकर में भी कहा गया है कि कोश के ज्ञाता लोग ऐसे को पसंद करते हैं जिसमें दिया जाय बहुत, पर निकाला जाय बहुत कम। वह प्रसिद्ध हो वहां देवताओं की पूजा की गई हो, अभिलिखित द्रव्यों से भरा हुआ हो, सुन्दर हो, विश्वस्त जनों की देखरेख में हो, मोती, सोना और रत्नों से परिपूर्ण हो, पिता पितामह के अनुरुप हो, धर्म से उपार्जित किया गया हो और व्यय का भार सहन करने वाला हो -

बह्व्दानोअल्पनि:स्नाव: रूयात: पूजितदैवत:।
ईप्सितद्रव्यसम्पूर्णो हृध् स्वाप्तैरधिष्ठित:।
मुक्ताकनकरत्नाढ्य: पितृपैतामहोचित:।
धर्माजितों व्ययसह: कोष: कोषज्ञसम्मत:। -राजनीतिरत्नाकर- अष्टमतरंड़:

राजनीतिरत्नाकर में ही कहा गया है कि कोष के जानकार विश्वस्त जनों द्वारा रक्षित कोष को सदा बढाना चाहिए और समय पर धर्म, अर्थ तथा काम की वृद्धि के लिए उसका व्यय भी करना चाहिए –

संवर्धयेत् सदा कोषमाप्तै स्तज्ज्ञैरधिष्ठितम्।
काले चास्य व्ययं कुर्यात त्रिवर्गपरिवृद्धे॥ - राजनीतिरत्नाकर-अष्टमतरंड़:

कोश वृद्धि के साधन –

कोश भरने का प्रमुख साधन कर है अत: धर्मशास्त्रों द्वारा उपस्थापित करग्रहण के सिद्धांतों की व्याख्या कर लेना उचित है -

(१)प्रथम सिद्धांत यह था कि स्मृतियों द्वारा निर्धारित कर के अतिरिक्त राजा अन्य कर नहीं लगा सकता था, अर्थात राजा अपनी ओर से मनमानी नहीं कर सकता था। कर की मात्रा वस्तुओं के मूल्य एवं समय पर निर्भर थी क्योंकि आक्रमण, दुर्भिक्ष आदि विपत्तियां भी आ सकती थीं। **गौतम धर्म सूत्र** में कहा गया है -

राज्ञो बलिदानं कर्षकैर्दशममष्टमं षष्ठं वा ॥ -गौ.ध.सू.२/१/२४.

अर्थात् कृषक खेत में जो उत्पन्न होता है उसका दसवां, आठवां अथवा छठां भाग कर के रूप में दे। यह व्यवस्था भूमि के अति भोग, मध्यम भोग और अल्पभोग के विषय में है। अति भोग भूमि का दसवां अंश, मध्यम भोग का आठवां अंश और अल्प भोग का छठा अंश कर के रूप में देना चाहिए। इसी प्रकार **मनु** ने भी कहा है –

पञ्चाशदभाग आदेयो राजा पशुहिरण्ययो:।
धान्यानामष्टमो भाग:षष्ठो द्वादश एववा।। -मनु. ७/१३०.

अर्थात् राजा के द्वारा पशु तथा सोने का पचासवां भाग तथा धान्य का आठवां, छठां या बारहवां भाग ही कर के रूप में लिया जाना चाहिए।

यह कर तो कृषि उपज के विषय में है धर्मशास्त्रों में कर के विषय में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है कि राजा किससे कितना द्रव्य कर के रूप में ले जैसे गौतम धर्मसूत्र में ही प्रत्येक व्यापार आदि के लिए अलग-अलग करों की व्यवस्था की गई है -

पशुहिरण्ययोरप्येके पञ्चाशदभाग:। -गौ.धर्म.सू.२/१/२५

अर्थात् कुछ आचार्यो का मत है कि पशुपालन से जीविका चलाने वाले और धन देकर ब्याज कमाने वाले प्रतिवर्ष क्रमश: पशुओं तथा मूलधन का पचासवां भाग राजा को कर के रूप में प्रदान करें।

अर्थशास्त्र में भी करों का विस्तार से वर्णन किया गया है । धान्यों का चौथा हिस्सा और वन में होने वाले अन्न का तथा रूई, लाख, जूट, छाल, कपास, ऊन, रेशम, औषधि, गन्ध, पुष्प, फल, शाक, बांस, सूखा मांस आदि का छठां हिस्सा राजा के द्वारा कर के रूप में लिया जाय। हाथी दांत और गाय आदि के चमड़े का आधा हिस्सा राज कर में लिया जाए। जो व्यक्ति इन वस्तुओं को छिपाकर बेचे उन्हें प्रथम साहस का दण्ड दिया जाय –

चतुर्थमंशं धान्यानां षष्ठं वन्यानां तूललाक्षाक्षौम वल्ककार्पास रौमकौशेयकौषगन्धपुष्पफलशाकपण्यानां काष्ठवेणुमांसवल्लूराणां च गृहीयु:।दन्ताजिनस्यार्धम्। अनिसृष्टं विक्रीणानस्य पूर्व:साहसदण्ड:।
-अर्थ.९०/२

यह भी कहा गया है कि कर प्रजा की अनुमति से वसूल किया जाय-

जनपदं महान्तमल्पप्रमाणं वादेवमातृकं प्रभूतधान्यं धान्यस्यांशं तृतीयं चतुर्थं वा याचेत। यथासारं मध्यमवरं वा।
– अर्थ.९०/२

अर्थात् बड़े या छोटे ऐसे जनपदों से अन्न का तीसरा या चौथा हिस्सा राजकर प्रजा की अनुमति से वसूल किया जाए, जहां का जीवन वृष्टि पर निर्भर हो और जहां काफी अनाज पैदा होता हो। इसी प्रकार मध्यम श्रेणी के या छोटे जनपदों से भी अन्न संग्रह किया जाय।

सोना, चांदी,इत्यादि वस्तुओं पर कर इस प्रकार अर्थशास्त्र में वर्णित है -

सोना, चांदी, हीरा, मणि, मोती, मूंगा, घोड़े और हांथी आदि व्यापारिक वस्तुओं पर उनकी लागत का पचासवां हिस्सा कर लिया जाये। इसी प्रकार सूत, कपड़ा, तांबा, पीतल, कांसा, गन्ध, जड़ी-बूटी और शराब पर चालीसवां हिस्सा, गेहूं धान आदि अन्न, तेल, घी, लोहा और बैलगाड़ियों पर तीसवां हिस्सा, कांच के व्यापारी तथा बड़े-बड़े कारीगरों पर बीसवां हिस्सा छोटे-छोटे कारीगरों तथा कुलटा स्त्रियों को घर में रखने वालों से दसवां हिस्सा और लकड़ी, बांस, पत्थर, मिट्टी के बर्तन, पकवान तथा हरे शाक आदि का पांचवां हिस्सा सरकारी टैक्स लिया जाए -

सुवर्णरजत वजुमणि मुक्ता प्रवालाश्वहसि पञ्चाशत्कारा:। सूत्रवस्त्रताम्र.....काष्ठवेणुपाषाणमृदभाण्डपक्वान्न हरितपत्या: पञ्चकरा:। - अर्थ. ९०/२

अर्थशास्त्र में ही कहा गया है कि राजा किसानों को सहायता भी दे –

धान्य पशुहिरण्यादिनिविशमानायदद्यात्। चतुर्थमंशं धान्यानां बीजभवतशुद्धं च हिरण्येन क्रीणीयात्।

अर्थात् नये बसने वाले किसानों को अन्न, बैल, पशु और धन सरकार की ओर से सहायतार्थ दिया जाए। इस तरह के किसानों से राजा उनकी उपज का चौथा हिस्सा खरीद ले और फिर बीज तथा उनके गुजारे लायक छोड़कर बाकी भी खरीद ले।

श्रोत्रिय से कर लेने का विधान नहीं है- **अकरांश्च" -गौ.धर्म.सू.२/१/११**

उपकुर्वाणांश्च। -" " २/१/१२

अरण्यजातं श्रोत्रियस्वं च परिहरेत् । तदप्यनुग्रहणे क्रीणीयात्। -अर्थ.९०/१२

अर्थात् जंगल में पैदा हुए तथा श्रोत्रिय द्वारा पैदा किये अन्न में राजा हिस्सा न ले । बीज और खाने योग्य अन्न को छोड़कर उसमें से भी राजा खरीद सकता है। यदि श्रोत्रिय खेती न करे तो समाहर्ता आदि अधिकारियों को चाहिए कि उस जमीन को वे गरमी की जुताई – बुवाई के लिए दूसरे किसानों को दे दें। यदि किसान की लापरवाही से बीज नष्ट हो जाए तो समाहर्ता उस पर दुगुना जुर्माना करे और दूसरी फसल पर उस सारी कार्यवाही को रजिस्टर में दर्ज कर दे। फसल की तैयारी होने पर किसानों को कच्चा पक्का अन्न लाने के लिए रोक दिया जाय। किन्तु वे देवपूजा या गाय के लिए मुट्ठी भर अनाज या मुट्ठी भर पुआल ला सकते हैं। किसानों को चाहिए कि वे भिखारी तथा गांव के नाईं, धोबी, कुम्हार आदि के लिए खलिहान में अन्न राशि के नीचे का हिस्सा छोड़ दे।

इसी प्रकार सरकार को पैदावार की कमी दिखाने के लिए किसान अपने ही खेत में चोरी करे तो उससे चोरी किए हुए अन्न का आठगुना दण्ड वसूल किया जाय । यदि कोई व्यक्ति अपने ही गांव में खड़ी फसल की चोरी करे तो चोरी के माल का पचास गुना दण्ड दिया जाय। यदि वह दूसरे गांव का हो तो प्राण दण्ड की सजा दी जाय।

पशुओं के विषय में इस प्रकार कहा गया है –

कुक्कुट सूकरमर्धं दद्यात्। क्षुद्रपशव: षड्भागम् गोमहिषाश्च तरखरोष्ट्राश्च दशभागम्। बन्धकीपोषका राजप्रेष्याभि: परमरूप यौवनाभि: कोशं संहरेयु:।

अर्थात् मुर्गे और सुअर पालने वाले उनकी आय का आधा हिस्सा कर दें। इसी प्रकार भेंड़ बकरी पालने वाले छठां हिस्सा, गाय. भैंसे, खच्चर, गधा तथा उंट पालने वाले दशवां हिस्सा राजकर दें। वेश्याओं के जमींदारों को चाहिए कि वे राज अनुमत रूपवती वेश्याओं द्वारा राजकोष के लिए धन जमा करें।

पशुहिरण्योरप्येके पञ्चाशद्भाग:। - गौ. धर्म सू. २/१/९५.

शांतिपर्व और **शुक्रनीतिसार** में छूट दे दी है कि आपत्तियों के समय राजा को भारी कर लगाने के लिए प्रजा से स्नेह पूर्ण याचना करनी चाहिए। कहा गया है कि अधिक कर लगाने के पूर्व राजा को चाहिए कि वह प्रजाजनों के समक्ष भाषण करे यथा-शत्रु आक्रमण करता है तो तुम्हारा सब कुछ यहां तक कि तुम्हारी पत्नियों तक को उठा ले जायेगा –

प्रागेव तु करादानमनुभाष्य पुन: पुन:।
संनिपेत्य स्वविषये भयंराष्ट्रेप्रदर्शयेत॥ २४
इयमापत्समुत्पन्ना परचक्रभयं महत्।
अपि नान्ताय कल्पेत वेणोरिव्फलागम:॥२५
अरण्यो में समुत्भाय बहुभिर्दस्युभि: सह।
इदमात्मवधायैव राष्ट्रमिच्छन्ति बाधितुम्॥२६
अस्यामापदि धोरायां संप्राप्ते दारूणे भये।
परित्राणाय भवतां प्रार्थयिष्ये धनानि व:॥२७
कलवमादित कृत्वा नश्येत्स्वं स्वयमेव हि।
अपि चेत्पुत्रदारार्थमर्थसंचय इष्यते॥-शान्तिपर्व अध्याय ८८

कोश वृद्धि का द्वितीय साधन-

कोश वृद्धि का द्वितीय सिद्धांत बड़े कवित्वपूर्ण एवं आलंकारिक ढंग से कहा गया है जिसका तात्पर्य यह है कि कर दाता को हलका लगे जिसे वह बिना किसी कठिनाई के दे सके। उद्योग पर्व (३४/१७-१८) में कहा गया है "जिस प्रकार मधुमक्खी मधु तो निकाल लेती है किन्तु फूलो को बिना पीड़ा दिये छोड़ देती है, उसी प्रकार राजा को मनुष्यों से बिना कष्ट दिये धन लेना चाहिए। मधुमक्खी मधु के लिए प्रत्येक फूल के पास जा सकती है किन्तु उसे फूल की जड़ नहीं काट लेनी चाहिए माली के समान उसे व्यवहार करना चाहिए न कि अंगारकारक के समान –

यथा मधु समादन्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पद:।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्ये आदद्यादविहिसया॥
पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारामे ने यथाङ्गार कारक:॥ -उद्योपर्व३४/१७-१८

मनु ने भी कहा है- **यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यांवार्योकोत्सषट्पदा:।**
तथाल्पाल्पो ग्रहीतत्यो राष्ट्रद्राज्ञाब्दिक:कर:॥ -मनु-७/१२

अर्थात् जिस प्रकार जोंक, बछड़ा तथा भंवरा थोड़े -थोड़े भोजन को खाते हैं उसी प्रकार राजा के द्वारा राष्ट्र से थोड़ा- थोड़ा वार्षिक कर ग्रहण करना चाहिए ।

शांतिपर्व में भी कहा गया है-

वत्सौपम्येन दोग्धतव्यं राष्ट्रमक्षीणबुद्धिना।
भृतो वत्सो जातबल:पीडांसहति भारत॥१८॥

न कर्म कुरुते वत्सो भृशं दुग्धो युधिष्ठिर।
राष्ट्रमत्यार्तदुगधं हि न कर्म कुरूते महत्॥ १९॥ –शान्तिपर्व अध्याय ८८

अर्थात् जैसे लोग बछड़े को भूखा न करके गाय को दुहते हैं, वैसे ही बुद्धिमान राजा राज्य को दुहे, क्योंकि गाय का बछड़ा दूध पीकर बलवान होने पर अधिक कष्ट सह सकता है। हे युधिष्ठिर। जैसे गाय का दूध अधिक दुहने पर उसका बछड़ा कर्म करने में समर्थ नहीं होता , वैसे ही अत्यन्त दोहन करने से राष्ट्र भी दरिद्र होने से महान कर्म नहीं कर सकता ।

कोशवृद्धि का तृतीय सिद्धान्त-

तीसरे सिद्धान्त के अनुसार कर वृद्धि क्रमश: और वह भी एक समय कम ही होनी चाहिए। जैसा कि अर्थशास्त्र में कहा गया है –

सकृदेव न द्वि: प्रयोज्य: । तस्याकरणे वा समाहर्ता कार्यमयदिश्य पौरजानपदान् भक्षेत्। योगपुरूषाश्चात्र पूर्वमतिमात्रं दधु:। एतेन प्रदेशेन राजा पौरजानपदान् भिक्षेत। कायटिकाश्चैनानल्पं प्रयच्छत कुत्सयेयु:। सारतो वा हिरण्यमाढ्यान् याचेत्।

इसी प्रकार **शांतिपर्व** में भी कहा गया है-

उत्पत्तिं दानवृत्तिं च शिल्पं संप्रेक्ष्य चासकृत्।
शिल्पप्रतिकरानेव शिल्पिन: प्रति कारयेत्॥
उच्चावचकरा न्याय्या: पूर्वराज्ञांयुधिष्ठर।
यथा यथा न हीयस्तथा कुर्यान्महीपति:॥ - शान्तिपर्व८८/१२-१३

शुक्रनीतिसार में कहा है- **तद्वृद्धिनीर्तिनैपुष्यात्क्षमाशीलनृपस्यच।**
जायतेतोयतेतैवया वद्बुद्धि बलोदयम्॥ - शुक्रनीति ४/३२

अर्थात् क्षमाशील राजा की नीतिनिपुणता से उनकी वृद्धि होती है इससे जितनी वृद्धि और बल का उदय हो उतने कोश वृद्धि का यत्न करे।

राजतरंगिणी का कहना है कि "कश्मीर का राजा कलश (१०६३-१०८९) वणिक की भांति आय व्यय की व्यौरा रखता था और बड़ी सावधानी बरतता था उसके पार्श्व में सदा एक लिपिक रहता था, जिसके हाथ में लिखने के लिए खड़िया एवं भूर्ज रहा करते थे।" राजतरंगिणी ७/५०७.५०८

कामन्दक ने विभागाध्यक्षों के कार्यों द्वारा कोश के भरण के लिए आठ प्रमुख स्त्रोतों का उल्लेख किया है- यथा – कृषि, जल -स्थल के मार्ग, राजधानी, जलों के बांध, हाथियों का पकड़ना, खानों में काम करना , धनिको से धन उगाहना, निर्जन स्थानों में नगरों एवं ग्रामों को बसाना।

मानसोल्लास में कहा गया है कि राजा को वार्षिक कर का तीन चौथाई भाग साधारणत: व्यय कर देना चाहिए और एक चौथाई बचाकर रखना चाहिए।

राजा को कर देने के विषय में बहुत से कारण बताये गए है जैसे- राजा रक्षा करता है अत: उसके लिए कर लेना चाहिए -**तद्क्षणधर्मित्वात् –गौ.ध.सू.२/१/२८**

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने कोश वृद्धि के उपाय इस प्रकार बताये हैं-

"राष्ट्र की सम्पत्ति को बढाना, राष्ट्र के चरित्र पर ध्यान रखना, राजकीय अधिकारियों को रिश्वत लेने से रोकना, सभी प्रकार के अन्नोत्पादन को प्रोत्साहित करन , जल स्थल मे उत्पन्न होने वाली प्रत्येक व्यापार योग्य वस्तुओं

को बढाना, अग्नि आदि के भय से राज्य की रक्षा करना, ठीक समय पर यथोचित कर वसूल करना और हिरण्य आदि की भेंट लेना, ये सब कोष वृधि के उपाय हैं।'' **अर्थशास्त्रम् २/२४/८**

कोष क्षय के कारण –

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने कोशक्षय के आठ कारण बताये हैं-

१.प्रतिबन्ध- राज कर को वसूल करना, वसूल करके उसे अपने अधिकार में न रखना और अधिकार में करके भी उसे खजाने में जमा न करना, यह तीन प्रकार का प्रतिबन्ध है। जो अध्यक्ष इन माध्यमों से कोष का क्षय करे उस पर क्षत राशि से दस गुना जुर्माना करना चाहिए –

सिद्धिनामसाधनमनवतारणमप्रवेशनं वा प्रतिबन्ध:।तव दश बन्धो दण्ड:। -अर्थशास्त्र २/२४/८

२.प्रयोग- कोष धन का स्वयं ही लेन देन करके वृद्धि का यत्न करना प्रयोग कहलाता है। ऐसे अधिकारी पर दुगुना जुर्माना करना चाहिए –

कोषद्रव्याणां वृद्धिप्रयोग: प्रयोग:।

३.व्यहार- कोष के द्रव्य से स्वयं ही व्यपार करना व्यवहार कहलाता है। ऐसा करने पर भी दुगुना दण्ड देना चाहिए ।

पण्यव्यवहारो व्यवहार:। तत्रफलद्विगुणोदण्ड:।

४.अवस्तार- राजकर वसूल करने वाला अधिकारी नियत समय से वसूली न करके रिश्वत लेने की इच्छा, समय बीत जाने का भय देकर प्रजा को तंग करके जो धन एकत्र करता है उसे अवस्तार कहते हैं ऐसा करने पर उसे नुकसान की राशि से पांच गुना दण्ड देना चाहिए –

क्लृप्तमायं परिहाययति व्ययं वा विवर्धयति परिहायणम्। तत्रहीन चतुर्गुणो दण्ड:।

५.परिहायण- जो अध्यक्ष अपने कुप्रबन्ध के कारण ही आय को कम कर देता और व्यय की राशि बढा देता है, उस क्षय को परिहायण कहते हैं। ऐसा करने पर अध्यक्ष को क्षय से चौगुना दण्ड दिया जाय-

६.उपभोग- राजकोष के द्रव्य को स्वयं भोग करना तथा दूसरों को भोग कराना 'उपभोग' क्षय है। इसके अपराध में अध्यक्ष को, यदि वह रत्नों का उपभोग करता है तो प्राण दण्ड ,सारद्रव्यों का उपभोग करता है तो मध्यम साहस दण्ड, और फल्गु एवं कुप्य आदि पदार्थों का उपभोग करता है तो,उससे द्रव्य वापस लेकर उसकी लागत का दण्ड दिया जाना चाहिए-

स्वयमन्यैर्वा राज्यद्रव्याणामुपभोजनमुपभोग्:। तत्र रत्नोप्भोगे धात: सारोपभोगे मध्यम: साहसदण्ड:, फल्गुकुप्योपभोगेतच्चतावच्च दण्ड:।

७.परिवर्तन- राजकोष के द्रव्यों को दूसरे द्रव्यों से बदल लेना परिवर्तन कहलाता है। इस कार्य को करने वाले अध्यक्ष के लिए भी उपयोग - क्षय के समान ही दण्ड दिया जाय।

राजद्रव्याणामन्यद्रव्येणादानं परिवर्तनं, तद् उपभोगेन व्याख्यातम्।

८.अपहार- प्राप्त आय को रजिस्टर में न चढाना, नियमित व्यय को रजिस्टर में चढाकर भी खर्च न करना और प्राप्त नीवी के सम्बन्ध में मुकर जाना, यह तीन प्रकार का अपहार है। अपहार के द्वारा कोषक्षय करने वाले अध्यक्ष को हानि से बारह गुना दण्डित करना चाहिए-

सिद्धमायं न प्रवेशयति निबद्धं व्ययं न प्रयच्छति, प्राप्तां नीवीं विप्रतिजानीत इत्यपहार:। तव द्वादशगुणोदण्ड:। -अर्थशास्त्र २/२४/८

निष्कर्ष-इस प्रकार हम देखते हैं कि राज्य प्रशासन में कोश की भूमिका अत्यन्त महनीय है। उसके बिना न तो सेना का सुचारू रुप से संचालन हो सकता है और न ही न्याय व्यवस्था सुचारू रूप से चल सकती है इसलिए राजा को कोश वृद्धि का हर संभव प्रयत्न करना चाहिए। अन्यथा राज्य व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं चल पायेगी।

सन्दर्भ- ग्रन्थ सूची-:

१. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, कौटिल्य, (व्याख्याकार)- वाचस्पति गैरोला, चतुर्थ संस्करण २००३

२. मनुस्मृति, (सं-) श्रीमती उर्मिला रूस्तगी १-१२ अध्याय, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, संस्करण २००७

३. महाभारत, शान्तिपर्व, (प्र.सं.) डा. पं श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी (जि. बलसाड) प्रथम संस्करण १९७९

४. राजनीतिरत्नाकर:, श्री चण्डेश्वर(व्याख्याकार) श्री वाचस्पति गैरोला एवं पं तारिणीस झा, चौ.संस्कृत, सीरीज आफिस, वाराणसी -१ प्रथम संस्करण १९७०

५.शुक्रनीति श्रीमच्छुकाचार्य,(नि.) खेमराज श्री कृष्णदास,

६.वैदिक व्यवस्था, डा. महावीर, समानान्तर प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००१.